ISSN 2249-894X Impact Factor : 3.1402 (UIF) Volume - 5 | Issue - 8 | May - 2016

Review Of Research

परंपरागत संचार के सशक्त माध्यम के रूप में कठपुतली: एक विश्लेषणात्मक अध्ययन

अख़्तर आलम

सहायक प्रोफेसर,जनसंचार विभाग,महात्मा गांधी अंतर्राष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय,वर्धा,महाराष्ट्र.

भूमिका -

कठपुतली का खेल अत्यंत प्राचीन कला है। यह खेलगुड़ियों अथवा पुतलियों के माध्यम से खेला जाता है जिसे पुतुल कला भी कहा जाता है। पुतली शब्द लेटिन भाषा के 'प्यूपा 'से लिया गया है। बेजान होते हुए भी यह सर्वाधिक लोकप्रिय विधा है।लोक नाटकों में कठपुतली का इस्तेमाल काफी प्राचीन समय से हो रहा है। भारत में पारंपरिक पुतली नाटकों की कथावस्तु में पौराणिक साहित्य और लोककथाओं की महत्त्वपूर्ण भूमिका रही है। इनकी विषयवस्तु मुख्यतः रामायण और महाभारत से संबंधित ही रहती थी। बाद में सम-सामयिक विषयों, महिला शिक्षा, प्रौढ़ शिक्षा, परिवार नियोजन के साथ-साथ हास्य-व्यंग्य, ज्ञानवर्धक व अन्य मनोरंजक कार्यक्रम भी दिखाए जाने लगे।कठपुतली कला की सबसे खास बात यह है कि इसमें कई कलाओं का सम्मिश्रण है,लेखन कला, नाट्य कला, चित्रकला, मूर्तिकला, काष्ठकला, वस्त्र निर्माण कला, रूप सज्जा, संगीत, नृत्य जैसी कई कलाओं का इस्तेमाल होता है। इसीलिये सम्भवतः बेजान होने के बाद भी ये कठपुतलियां जिस समय अपनी पूरी साज सज्जा के साथ मंच पर उपस्थित होती हैं,दर्शक पूरी तरह इनके साथ बंध जाता है। पिछले कुछ सालों से परंपरागत रीति-रिवाजों पर आधारित कठपुतली के खेल में काफी परिवर्तन आया है। कठपुतली कला देश की सांस्कृतिक धरोहर होने के साथ-साथ प्रचार-प्रसार का एक परंपरागत सशक्त माध्यम भी है। देश की 70 फीसदी आबादी आज भी ग्रामीण है। परंपराओं और रीति रिवाजों में रचा-बसा देहाती समाज आज भी अपनी अलग दुनिया में जीता है। ऐसे माहौल में परंपरागत माध्यमोंका महत्व अधिक बढ़ जाता है। लेकिन आधुनिक सभ्यता में मनोरंजन के नित नए साधन आने से सदियों पुरानी यह कला अब लुप्त होने के कगार पर है।

कठपुतली का इतिहास-

कठपुतली का इतिहास बहुत पुराना है। ईसा पूर्व चौथी शताब्दी में पाणिनी की अष्टाध्यायी में नटसूत्र में पुतला नाटक का उल्लेख मिलता है। कुछ लोग कठपुतली के जन्म को लेकर पौराणिक आख्यान का जिक्र करते हैं कि शिवजी ने काठ की मूर्ति में प्रेम कर पार्वती का

मन बहलाकर इस कला की शुरुआत की थी। कहानी 'सिंहासन बत्तीसी' में भी विक्रमादित्य के सिंहासन की बत्तीस पुतलियों का उल्लेख है। सतवध्दर्धन काल में भारत से पूर्वी एशिया के देशों इंडोनेशिया, थाईलैंड, म्यांमार, जावा, श्रीलंका आदि में इसका विस्तार हुआ। आज यह कला चीन, रूस, रूमानिया, इंग्लैंड, चेकोस्लोवाकिया, अमेरिका व जापान आदि अनेक देशों में पहुंच चुकी है। इन देशों में इस विधा का समसामयिक प्रयोग कर इसे बहुआयामी रूप प्रदान किया जा रहा है। वहां कठपुतली मनोरंजन के अलावा शिक्षा, विज्ञापन आदि अनेक क्षेत्रों में इस्तेमाल किया जा रहा है।

भारत में पारंपरिक पुतली नाटकों की कथावस्तु में पौराणिक साहित्य, लोककथाएं और किवदंतियों की महत्वपूर्ण भूमिका रही है। पहले अमर सिंह राठौड़, पृथ्वीराज, हीर-रांझा, लैला-मजनूं और शीरी-फ़रहाद की कथाएं ही कठपुतली खेल में दिखाई जाती थीं।

कठपुतली की संरचना एवं विषय-

बरसों से जिस कठपुतली के खेल का प्रचलन रहा है, वह अब बदल गया है। पहले कठपुतली बनाने में कपड़े, चाक, मिट्टी और लकड़ी का इस्तेमाल किया जाता था। अब लेटेक्स, फोम, फाइबर ग्लास, जॉर्जेट, शिफॉन और कभी-कभी लकड़ी का भी प्रयोग किया जाता है। प्रारंभ में कठपुतलियां लकड़ियों से ही बनाई जाती थीं और अन्य प्रकार की कठपुतलियों का अविष्कार नहीं हुआ था। अत: काठ लकड़ी से बनी होने के कारण कठपुतली नाम ही जनमानस में प्रचलित हो गया जबकि वर्तमान में सर्वाधिक कठपुतलियां कागज की लुग्दी से बनाई जाती हैं क्योंकि इनका वजन अत्यंत कम होता है और इनका संचालन भी सरलता से किया जा सकता है। निर्माण की दृष्टि से कठपुतली चार प्रकार की होती हैं- 1.धागे वाली कठपुतली, 2. छड़ी वाली कठपुतली, 3. दस्ताने वाली कठपुतली, 4. छाया कठपुतली। कठपुतलियों के महत्तव को दर्शाने हेतु प्रत्येक वर्ष21 मार्च को विश्व कठपुतली (पुतुल) दिवस भी मनाया जाता है। देश के 14 राज्यों में अलग-अलग ढंग से कठपुतली का खेल होता है। त्रिपुरा, तमिलनाडु, महाराष्ट्र, केरल, आंध्र प्रदेश, उड़ीसा, असम, पश्चिम बंगाल, मणिपुर और कर्नाटक में कठपुतली का खेल प्रचलित है। हम जिस स्ट्रिंग अथवा डोर वाली कठपुतली शैली को पहचानते है, वह राजस्थान की पारंपरिक कठपुतली शैली है। असम त्रिपुरा आदि को छोड़ दें, तो बाकी जगह शैडो (छाया) पपेट का ज्यादा चलन है। और यह हजारों साल से है। महाभारत, रामायण, पुराण के पात्र ज्यादा प्रसिध्द हैं। पश्चिम बंगाल में मां दुर्गा सज्यादा जोर है। उत्तर भारत में राजस्थान, बिहार, उत्तर प्रदेश और झारखंड में लोक कहानियों पर कठपुतली के खेल होते हैं। उड़ीसा और केरल में ग्लव्स वाले पपेट भी किए जाते हैं। पश्चिम बंगाल में रॉड से कठपुतलियों का खेल किया जाता रहा है। पर्यावरण संरक्षण, स्वास्थ्य एवं स्वच्छता, संक्रामक रोगों के उपचार व सावधानियां, अंधविश्वास से मुक्ति, वैज्ञानिक व तकनीकी अभिवृत्ति का विकास, गौ-हत्या निषेध, नशाखोरी उन्मूलन, विद्युत संरक्षण, एड्स, के प्रति जागरुकता, शिक्षा व मनोरंजन आदि वर्तमान में कठपुतली के विषय हैं।

वैज्ञानिक संचार का सशक्त माध्यम कठपुतली-

वर्तमान समय विज्ञान का है। जीवन और समाज का कोई भी क्षेत्र इससे अछूता नहीं है। देश के सर्वांगीण विकास के लिए प्रत्येक व्यक्ति तक विज्ञान का पहुंचना अत्यंन्त जरूरी है।परन्तु हमारे सामने सबसे बड़ी चुनौती यह है कि इतने बड़े जनमानस में विज्ञान का संचार कैसे किया जाए जबकि अधिकांश जनसंख्या कम पढ़ी-लिखी है और आधी से ज्यादा आबादी ग्रामीण क्षेत्रों में निवास करती है। जहां आज भी उचित संसाधनों का अभाव है।

ऐसे में हमें संचार हेतु एक ऐसे माध्यम की आवश्यकता महसूस होती है जो एक साथ साक्षर- निरक्षर, ग्रामीण-शहरी, बच्चे बड़े और बूढ़े सभी लोगों पर प्रभाव डाल सके और साथ ही ऐसी विषम परिस्थितियों में विज्ञान संचार हेतु एक ऐसे माध्यम की तलाशजो सर्वसुलभ, मितव्ययी तथा लोगों में रूचि उत्पन्न करने में समर्थ हो। यदि हम अपनी प्राचीन सभ्यता एवं संस्कृतिमें झांक कर देखे तो इन सारी चुनौतियों से लड़ा जा सकता है। प्राचीन काल में जब संचार के विभिन्न आधुनिक उपकरणों का अविष्कार नहीं हुआ था तब धार्मिक प्रवचन, गीत-संगीत, चौपाल, कथा-वाचन, पर्यटन, यात्र वृतांत, नाटक, लोक-नाट्य, कठपुतली, नुक्कड़ नाटक आदि के माध्यम से संचार का काम लिया जाता था। परंपराओं और संस्कृतियों की भांति ये माध्यम भी पीढ़ी दर पीढ़ी हस्तांतरित होते रहे हैं। और आज भी हमारे सामने जीवन्त हैं। विज्ञान संचार हेतु विज्ञान नाटिका की रचना कर वैज्ञानिक तथ्यों और यथार्थ को आधार बना कर वैज्ञानिक तथ्यों को नाटिका में विभिन्न पात्रों के जरिए एक तार्किक व रोचक क्रम में दर्शकों की स्थानीय भाषा शैली में पिरोकर वैज्ञानिक तथ्यों के साथ-साथ हास्य मनोरंजन

लोकोक्तियों आदि का समावेश करते हुए वैज्ञानिक संचार को जन- जन तक पहुंचाया जा सकता है। कठपुतली वैज्ञानिक संचार कापारम्परिक सशक्त माध्यम है। कम खर्च में भारत की सांस्कृतिक विरासत को संरक्षित करते हुए सामाज में वैज्ञानिक जागरुकता को फैलाया जा सकता है।

कठपुतली के पारंपरिक कलाकारों को रोजगार की तलाश-

छोटे-छोटे लकड़ी के टुकड़ों, रंग-बिरंगे कपड़ों पर गोटे और बारीक काम से बनी कठपुतलियां हर किसी को मुग्ध कर लेती हैं। कठपुतली के खेल हर प्रांत के मुताबिक भाषा, पहनावा व क्षेत्र की संपूर्ण लोक संस्कृति को अपने में समेटे रहते हैंलेकिन आदि काल से लेकर आज तक कठपुतली- कला में विविध परिवर्तन होता आया है। पहले यह खेल जहां सड़कोंव गलियों में कुछ धार्मिक कहानियों को लेकर हुआ करता था, अब यह खेल लाइट्स की चकाचौंध रोशनी में रंग-मंच पर प्रस्तुत किया जाने लगा है। कठपुतलीकला को न केवल देश में, बल्कि विदेशों में भी लोकप्रियता मिली है, लेकिन इस कला में आधुनिकता का प्रवेश हो जाने के कारण इसके लौकिक स्वरूप में गिरावट आ गई है। काठ, चमड़े और कपड़े की कठपुतली को अपने इशारों पर नचाकर लोगों का मनोरंजन करने वाले कठपुतली के कलाकार इस कला के घटते कद्रदानों की वजह से अपने पेशे को छोड़ने के लिए मजबूर हैं। जो पूरी तरह कठपुतली बनानेऔर उसका खेल दिखाकर जीविकोपार्जन करते हैं और इनकी कमाई का एकमात्र यही जरिया है ऐसे कठपुतली कलाकारों को जीविकोपार्जन के लिए गांव-कस्बों से पलायन करना पड़ रहा है। कठपुतली के घटते कद्रदानों की वजह से परिवार अपने पुश्तैनी धंधों को छोड़कर अन्य कार्यों की ओर अग्रसर हो रहे हैं। देश में इस कला के चाहने वालों की तादाद लगातार घट रही है, बड़े दुख के साथ कहना पड़ रहा है कि अपने देश की कला अपने ही देश मे बेगानी होती जा रही है। विदेशियों में इस कला की लोकप्रियता बढ़ रही है। पर्यटक सजावटी चीजें, स्मृति और उपहार के रूप में कठपुतलियां भीयहां से ले जाते हैं मगर इन बेची जाने वाली कठपुतलियों का फायदा बड़े-बड़े शोरूम के विक्रेता ही उठाते हैं। जबकि इनको बनाने वाले कलाकरों को दो जून की रोटी जुटा पाने में भी मुश्किलों का सामना करना पड़ रहा है।समाज को बेदार करने में कठपुतली का विशेष महत्व रहा है लेकिन यह बड़े खेद का विषय है कि वर्तमान समाज में यह कला किसी व्यक्ति की जीविका का साधन नहीं बन पा रही है और लोककला के अंतरगत कठपुतली की यह प्रतिनिधि रंगमंचीय शैली अब लुप्त होती जा रही है।

शिक्षा में कठपुतली की उपयोगिता-

आज के आधुनिक समय में सारे विश्व के शिक्षाविदों ने संचार माध्यम रूप में पुतलियों की उयोगिता के महत्वका अनुभव किया है। सृजनात्मक नाटक के माध्यम से बच्चों में आवश्यक संचार करने के लिए बहुत ही उपयोगी प्रयोग है। जिससे बच्चा विचारों को बहुत ही आसानी से आत्मसात कर लेता है। प्रभावशाली नाटकीकरण के माध्यम से बच्चों में विषय की समस्याओं के प्रति जागरुक किया जा सकता है।उदाहरणस्वरूप यदि हम बच्चे को भोजन करने से पहले हाथ धोने की आदत सिखाना चाहते हैं तो कुछ पात्रों से इसकी आवश्यकता पर केवल बातचीत करवाना प्रभावी नहीं होगा। इसके लिए एक बच्चे को ही नाटक में प्रभावशाली भूमिका निभानी होगी। नाटक की रूपरेखा कुछ इस प्रकार हो सकती है कि पात्र बच्चा गंदे हाथों से भोजन करने की आदत पर अड़ा रहता है जिसके परिणामस्वरूप वह बीमार पड़ जाता है और उसे अपने साथियों के साथ खेलने से रोक दिया जाता है। वह ऊब जाता है। मन बहलानेके लिए वह कई प्रयत्न करता है, किन्तु सब व्यर्थ क्रुध्द हो कर वह अपने खिलौनों को तोड़ देता है, अथवा उसकी मां खिलौने छीन लेती है। जब वह शांत होता है तो वह उसे प्यार से समझाती है कि वह उसे उसके सबसे प्रिय मित्र के साथ बाहर भोजन करने के लिए भेजेगी, यदि वह भोजन से पहले हाथ धोने का वचन दे। यह प्रयोग बहुत सफल रहता है। और बच्चा हर्षोउल्लास से भर उठता है। दर्शक समझ जाते हैं कि इसके पश्चात बच्चा हाथ धोएबिना भोजन नहीं करेगा। इस कथानक में कई अन्य काल्पनिक पुट भी दिए जा सकते हैं। जैसे कि उसके खिलौने सजीव हो उठते हैं और जब वह उन्हें छूने लगता है, तो वे भाग खड़े होते हैं। यह भी हो सकता है कि बच्चा दुस्वप्न देखे जिसमें कीटाणु राक्षस बन कर उस पर आक्रमण करें। शिक्षा के क्षेत्र में भी कठपुतली का विशेष महत्तव बढ़ रहा है।

संचार का शसक्त माध्यम कठपुतली-

कुछ केस स्टडी के माध्यम से यह समझने की कोशिश की गई है कि कठपुतली कैसे संचार का सशक्त माध्यम है।

वरुण नारायण

वरुण नारायण का कंटेंपररी पपेट शैली में काफी योगदान रहा है। वरुण जामिया मीलिया इस्लामिया विश्वविद्यालय में मास कम्युनिकेशन पढ़ाते थे। अचानक उनके मन में आया कि बचपन के शौक को क्यों न किसी अच्छे उद्देश्य के लिए शुरू किया जाए। शायद ही किसी ने उनसे पहले सेक्स एजुकेशन पर काम किया होगा। वरूण का कहना है कि उनका उद्देश्य लोगों को यौन संबंध पर जानकारी देना नहीं है, बल्कि लिंगभेद जैसे मुद्दों को मौलिक रूप में समाज के सामने प्रस्तुत करना है। क्या प्रेम और विवाह विपरीत सेक्स के साथ करना ही जरूरी है, क्यों विवाहेतर संबंधरखने का अधिकार पुरूषों को ही है, क्या किसी पुरुष का मन स्त्रियों की तरह सजने-संवरने का नहीं कर सकता, क्यों बच्चे के नाम पर हमेशा पिता का नाम ही जुड़ता है- जैसे सवालों को वरुण ने अपने पपेट्स के जरिए उठाया। वरुण पहले अपने शो सिर्फ थिएटर पर ही करते थे। लेकिन, अब स्ट्रीट प्ले भी करते हैं।

अनुरूपा रॉय

दिल्ली में अनुरूपा रॉय ने मॉडर्न पपेटरी को बढ़ावा दिया है। जिस पारंपरिक कठपुतली के खेल का चलन हमारे यहां था, उसमें आर्थिक तंगी के कारण पारंपरिक कठपुतली कलाकार अन्य काम करने को मजबूर हो जाते हैं। यही कारण है कि भारत से लोककलाएं लुप्त होती जा रही हैं। अनुरुपा रॉय जैसे नए पपेटियर के प्रयासों से कठपुतली का खेल गली-नुक्कड़ में दिखाए जाने तक सीमित नहीं रह गया है। उनका कहना है कि समकालीन पपेटरी आसान नहीं है। देश-विदेश में उनके कई शो होते हैं, जिसने उन्हें नाम और पैसा दोनों दिए। ट्रेडिशनल पपेट में नायक (कृष्ण अथवा राम) के चेहरे को नीले और खलनायक (रावण, कंस, महिषासुर आदि) के चेहरे को काले और लाल से लीपा जाता है। लेकिन समकालीन पपेट आर्ट में पपेट को तैयार करते वक्त उनके फेशियल एक्सप्रेशन का ध्यान रखा जाता है। इसलिए देखने में अजीब और बदरंग दिखते हैं। और इन्हें बनाने में कई महीने लग जाते हैं। रॉय का कहना है कि लोग इसे पपेटरी कहते हैं, जबकि हमारे लिए ये पपेट थिएटर है। यहां हम केवल कठपुतली नचाकर लोगों का मनोरंजन नहीं करते बल्कि पपेट थिएटर संचार का सबसे सीधा जरिया है। पपेट थिएटर बच्चों, बूढ़ों, बड़े, अमीर, गरीब किसी भी वर्ग या जाति विशेष का हो सबके लिए है।

इशारा पपेट थिएटर ट्रस्ट

दादी पदमजी ने इशारा पपेट थिएटर ट्रस्ट की शुरूआत 1986 में की थी। इस संस्था ने भारतीय पारंपरिक और समकालीन कठपुतली को अंतरराष्ट्रीय मंच तक पहुंचाया है। यह संस्था पपेट फेस्टिवल का आयोजन करती रही है जिसमें ईरान, इजराइल, ब्राजील, इटली और स्विटजरलैंड के कलाकारों तक शिरकत कर चुके हैं। पदमजी जितनी बेहतरी से माडर्न पपेटरी को जानते हैं उतनेही करीब से ट्रेडीशनल पपेटरी को भी पहचानते हैं। इस संस्था की नीव रखने वाले पदमजी का कहना है कि हमारी कोशिश सिर्फ पपेट थिएटर को जिंदा रखना नहीं है, बल्कि एक सोशल मैसेज भी देना है।

निष्कर्ष-

कठपुतली परंपरागत संचार का सशक्त माध्यम है। शिक्षा हो, विज्ञान हो, या फिर समाज को बेदार करने से संबंधित मुद्दे इन सारे क्षेत्रों में परंपरागत संचार माध्यम की आवश्यकता है।देश की 70 फीसदी आबादी आज भी ग्रामीण है। अधिकांश जनसंख्या कम पढ़ी-लिखी है उचित संसाधनों का अभाव है। ऐसे में इस परंपरागत कला के मूल को बचाते हुए इस परंपरागत सशक्त संचार माध्यम की उपयोगिता को समझना होगा।

संदर्भ :

1. कांट्रेक्टसनई दिल्ली .शिक्षा में सृजनात्मक नाटक एवं कठपुतली.(1999) .मेहर आर ,: नेशनल बुक ट्रस्टइंडिया,
2. वत्स .(2015 मार्च) .प्रीतिमा ,कठपुतली बदलते परिवेश में रेल बंधु
3. कैंथोला.(2010 मार्च) .गीता ,नाची क्यों नाची: शुक्रवार

अख़्तर आलम

सहायक प्रोफेसर,जनसंचार विभाग,महात्मा गांधी अंतर्राष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय,वर्धा,महाराष्ट्र